पुस्तकालय माने क्या?

जितेन्द्र कुमार

पुस्तकालय से परिचय पहली बार स्कूल में हुआ। उसके बाद कॉलेज व विश्व विद्यालय के पब्लिक पुस्तकालयों को देखने का मौका मिला। गली मोहल्लों के छोटे पुस्तकालयों के अलावा KSSP की लाइब्रेरी मूवमेंट के बारे में सुनने को मिला। ऐसी बात नहीं कि ये हलचल हमें आज के दौर में ही सुनाई दे रही है। पुस्तकालयों का इतिहास हज़ारों साल पुराना है। इसकी एक बेहतर मिसाल, एलेक्ज़ेण्डरिया में 300 ईसा पूर्व में स्थापित पुस्तकालय है जिसमें लगभग सात लाख पाण्डुलिपियों को संग्रहित किया गया था। इसमें तत्कालीन विश्व के महान दार्शनिकों, गणितज्ञों, वैज्ञानिकों के लेखन का लगातार संग्रह किया जाता रहा। अरस्तु के निजी संग्रह को भी इसमें रखा गया था। इस पुस्तकालय का महत्व इस बात से और बढ़ जाता है कि इसको कई बार जलाया गया और पुनर्स्थापित किया गया। पुस्तकालयों के महत्व को कितनी जल्दी समझ लिया गया था, यह एक ध्यान आकर्षित करने वाली बात है। लाइब्रेरी की प्रासंगिकता की बात करने लगें तो बड़ी जल्दी अंगुलियों पर आपको तर्क गिना दिए जाएंगे, कि पुस्तकें ज्ञान का भण्डार होती हैं, हमें वहां कई सारी तरह-तरह की पुस्तकें एक साथ मिल जाती हैं, किताबें महंगी होने के कारण हर किताब खरीदना हर किसी के लिए संभव नहीं, आदि, आदि।

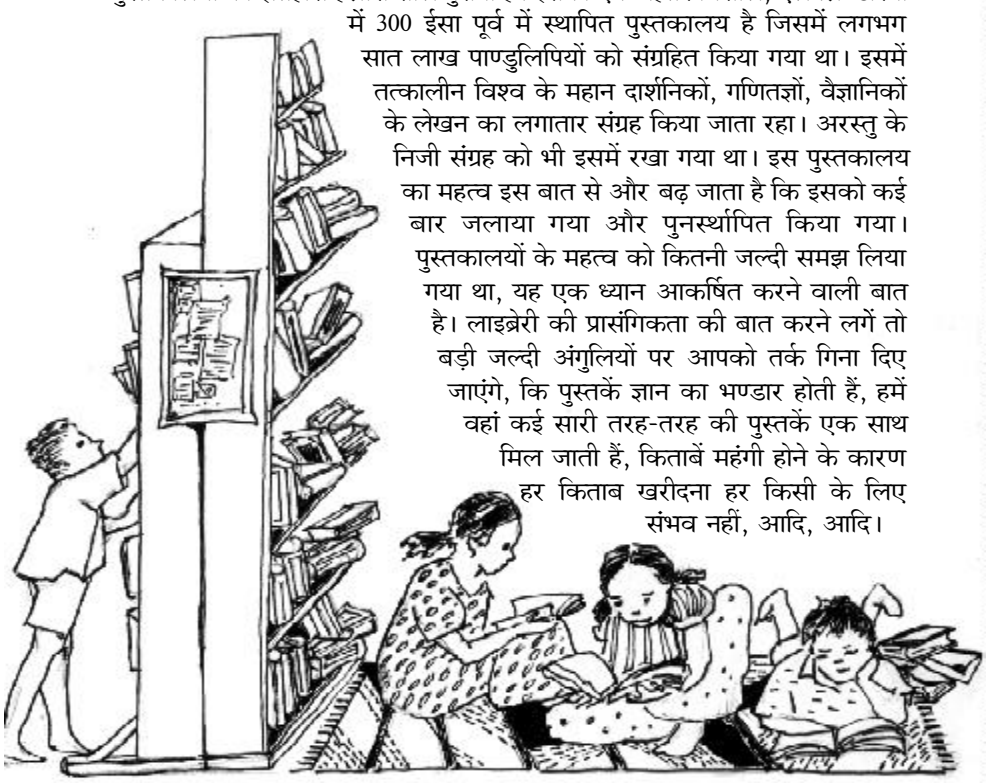

सभी चित्र: विल्लव शशि

पुस्तकालय विचारों के प्रचार-प्रसार का एक उत्तम माध्यम है। इसमें कोई शक नहीं, बिल्कुल सही बात है। लेकिन पुस्तकालय का दूसरा नाम आज़ादी भी है। आज़ादी अपनी मर्ज़ी का पढ़ने की, आज़ादी अपनी मर्ज़ी से पढ़ने की।

मैं पिछले कुछ समय से प्रतिदिन दो घण्टे बच्चों के पुस्तकालय में बिता रहा हूं। यह पुस्तकालय होशंगाबाद के मालाखेड़ी जैसे ग्रामीण परिवेश के करीब है। एकलव्य के नए परिसर में शुरू किए गए इस पुस्तकालय में बच्चों की सदस्यता दो महीने के भीतर 225 तक पहुंच गई है। उनकी आयु 4 से 18 वर्ष के बीच है। अधिकतर बच्चे स्कूल में पढ़ने वाले हैं लेकिन कुछ स्कूल न जाने वाले भी। कइयों को पढ़ना आता है लेकिन अधिकतर को नहीं आता। परन्तु किताबों का चस्का सबको है। शायद इसका मुख्य कारण किताबों का इतनी आसानी से उपलब्ध न हो पाना हो। मगर उपलब्ध हो जाएं तो क्या हो, इसकी मिसाल रोज़ देखने को मिलती है।

अक्सर देखता हूं बच्चे किताबें छांटने में बड़ा वक्त लगाते हैं, लेकिन जब छांट कर लाते हैं तो देखकर बड़ा अचरज होता है, ये क्या ! एक बच्चा जिसने अभी स्कूल जाना शुरू ही किया होगा, उम्र लगभग 5-6 साल के आसपास होगी, किताबों की अलमारी में घुस गया। काफी समय लगाकर वो बाहर आया और हाथ में 'पंचायत की किताब' जिसका आकार और मोटाई अच्छी खासी थी। उसको ये किताब क्यों पसंद आई, जवाब था - 'क्योंकि ये मोटी है'। मेरी धारणा थी कि बच्चे सुन्दर,

चटकीली और पतली-छोटी किताबें पसंद करते हैं, लेकिन यहां तो आलम ही दूसरा था। छोटे अक्षरों में लिखी बेरंग-सी किताब बच्चे को भा गई - क्योंकि 'मोटी है'। मैंने दिलचस्पी की जांच के लिए, उसे दूसरी आकर्षक किताबें लेने की सलाह दी, मगर उसे तो वही पुस्तक चाहिए थी। अब मना क्योंकर हो, किताब दे दी गई। लेकिन ये उदार प्रवृत्ति शायद बच्चे के पिताजी को जंची नहीं, जो बाहर खड़े थे। वे अन्दर आए - "बेटा, अभी जो तुम्हारे मतलब की है वो पढ़ लो।" और किताब बदलवा दी गई। बच्चे ने पिताजी की आज्ञा का पालन किया और पिताजी द्वारा छांटी पुस्तक लेकर चला गया।

पता नहीं वो अपने पिताजी के 'मतलब' का आशय समझ गया था या नहीं, कह नहीं सकता। लेकिन पिताजी बच्चे के 'मतलब' (ध्येय) को नहीं समझ पाए। जो शायद पढ़ना ही था, सिर्फ पढ़ना लिखे हुए को पढ़ना। छह साल का बच्चा इस पुस्तक से क्या पढ़ता, नहीं कह सकता। लेकिन जो देखा उससे एक इशारा मिलता है, वो एक अन्य उदाहरण से बताना चाहूंगा।

एक अन्य बच्चा जिसकी उम्र इतनी ही रही होगी या फिर दो-एक साल ऊपर होगी, अक्सर अंग्रेज़ी की किताबें ही उठाता है। वो भी ABCD या पिक्चर-बुक नहीं बल्कि उसकी पसंदीदा पुस्तकें हैं - CBT

द्वारा प्रकाशित छोटे उपन्यास या नाटक की एक किताब जिसमें चित्र बिल्कुल भी नहीं हैं और जो सवा सौ पेज की है। लेकिन वो किताबें खोजकर उसकी लाइनों में ABC पढ़ता है और किसी भी पन्ने पर उसकी पढ़ाई/तलाश शुरू हो जाती है।

इस प्रक्रिया में जो मार्के की बात है - बच्चे ने अपना सीखने का रास्ता खुद तलाश किया; अपनी शर्त तय की और संदर्भ तलाशा है सीखने के लिए। यहां सारी इच्छा शक्ति का आधार उसका अपना आत्मविश्वास है। पियाजे के अनुसार बच्चे का सीखना एक सक्रिय मस्तिष्क का परिणाम है, न कि निष्क्रिय आत्मसातीकरण (is an active process, not a matter of passive absorption)। पिताजी ने बच्चे के लिए उसका मतलब निश्चित कर दिया, शायद उसको एक रास्ता भी दे दिया। लेकिन जो सीखने के सौ रास्ते बच्चा, स्वयं खोज लेता उनकी संभावनाएं उन्होंने समाप्त कर दीं, उसकी रचनात्मकता का दायरा अत्यन्त सीमित कर दिया गया।

इसके अलावा एक दम उलटे उदाहरण भी हैं। ऐसे भी युवा आते हैं जो 14-18 के बीच के हैं लेकिन पढ़ने के लिए me too या 'चूहे को मिली पेंसिल' जैसी पिक्चर बुक का चुनाव करते हैं। ये युवा शायद उन में से हैं जो स्कूलों में 'अच्छा' पढ़ने वाले नहीं हैं। लेकिन यहां वो अपना स्तर समझते हुए बिना किसी हिचकिचाहट अपनी रुचि का साहित्य पढ़ रहे हैं जो उनके लिए अत्यन्त सुखद है, और लिखित भाषा को पढ़ना सीखने के लिए अनिवार्य शर्त।

ये तो बात हुई उस सुविधा, उन अवसरों की जो पुस्तकालय पाठकों को उपलब्ध कराता है, लेकिन आज भी हमारे ग्रामीण अंचल के स्कूलों में इन पुस्तकालयों के लिए कोई स्थान नहीं है। शहरी इलाकों में तो पठनीय सामग्री कई रूपों में देखने को मिल जाती है; लेकिन ग्रामीण स्कूलों में बच्चे सिर्फ बदरंग-सी पाठ्यपुस्तक के सहारे पढ़ना सीखते हैं, लिपि (शब्दों) से उनका परिचय एक सीमित दायरे, सीमित संदर्भों में ही होता है।

तो क्या ये ज़रूरी नहीं कि हम ऐसी पुस्तकों को पुस्तकालयों के ज़रिए स्कूलों में पहुंचाएं? ऐसे तरीके विकसित करें ताकि स्कूलों में तथाकथित रूप से मौजूद पुस्तकालय की पुस्तकों तक बच्चों की पहुंच सुगम बन पाए?

जितेन्द्र कुमार: दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद एकलव्य के होशंगाबाद केन्द्र में 'बुनियादी क्षमता विकास कार्यक्रम' में कार्यरत हैं।
चित्र: विप्लव शशि। वडोदरा की एम. एस. यूनिवर्सिटी से फाइन आर्ट्स में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त करने के बाद चित्रकारी में मशगूल।